जैन दर्शन सम्पूर्ण पर्यावरण हितेषी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जैन धर्म–दशान ही है जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीवन स्वीकार करता है। पृथ्वी जल और वनस्पति में जीवन तो आज विज्ञान भी स्वीकार करता है। सभी तत्त्वों में जीवन स्वीकार करने के साथ ही जैन धर्म ने यह कहा कि वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमा, मार्दव, आर्जव, शोच आदि आत्मा के दस धर्म हैं, रत्नत्रय धर्म है और जीवों का रक्षण करना धर्म है। देखा जाए तो जैन परम्परा में यहीं से पर्यावरण संरक्षण का प्रारम्भ होता है। आचारांग जो तीसरी शदी का ग्रन्थ माना जाता है, में कहा गया है– सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वों को न मारना चाहिए, न अन्य व्यक्ति के द्वारा मरवाना चाहिए, न उन पर प्राणापहार या उपद्रव करना चाहिए, यही शद्ध धर्म है जगत् की जितनी भी वस्तुएं हैं उनको मूल स्वभाव में रहने देना और उन्हें भली प्रकार से जान लेना सबसे बड़ा धर्म है। वस्तु के मूल स्वभाव को जानने के सन्दर्भ में धर्म को प्रस्तुत कर जैन धर्म को मानवता से जोड़ने का प्रयत्न किया गया है और आणमों में कहा गया है कि–

जयं चरे जयं चिट्टे जये मासे जये सये।

जये भूसेज्ज भासेज्ज एव पावं ण वज्झाई।।

अर्थात् मानव यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, यत्नपूर्वक बैठ, यत्नपूर्वक सोये, यत्नपूर्वक भोजन करे और यत्नपूर्वक बोले तो इस प्रकार से संयत जीवन जीने से वह कर्मों में नहीं बंधता।

पर्यावरण और प्रकृति से हमारा जन्म–जन्मान्तर का साथ है। दोनों के बिना मानव अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रकृति और पर्यावरण की गोद में ही हम पलते हैं और भाँति–भाँति के क्रियाकलाप करते हैं। वस्तुतः पर्यावरण हमारे चारों ओर रहने वाला प्राकृतिक वातावरण है, जिसमें भूमि, हवा, पानो और वनस्पति जगत् सम्मिलित हैं। यह एक सार्वजनिक विरासत है, जिसे हमारा असंयमित व्यवहार छीन रहा है, उसकी छेड़छाड़ कर उसे असंतुलित बना रहा है। कहीं गंदे पानी, रसायनों और गैसों से नदियों की पवित्रता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है तो कहीं मानवता त्राहिमाम कर रही है। हालात यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी रूप में प्रदूषित होती जा रही है। ऐसे में जब हम जैन धर्म–दर्शन के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ पर्यावरण के संरक्षण के लिए मानव

चेतना को पूर्व में ही सचेत किया जा चुका है। आज हम भाईचारे की बात करते हैं, प्रेम की बात करते है, मानव कल्याण की बात करते हैं, वहीं जैन धर्म जीव मात्र के कल्याण की बात करता है। **विश्व में एक मात्र जैन धर्म ही है जिसने पंचतत्त्व अर्थात् स्थावर, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी एवं वनस्पति में जीव का होना मानकर ब्रह्माण्ड में निवास करने वाले सभी प्रकार के जोवों का एक से पाँच इन्द्रिय तक का अलग–अलग विभाजन किया है।** एक इन्द्रिय जीव जल, वायु, पृथ्वी, वनस्पति आदि के साथ द्विन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक के सामंजस्य का दूसरा रूप ही पर्यावरण संतुलन है। मनुष्य के अतिरिक्त सभी जीव प्रकृति से व अन्य जीवों के साथ सामन्जस्य बनाकर चलते हैं जैसे–शाकाहारी जीव गाय, बैल पेट भरने के बाद सामने पड़ा चारा नहीं खाते एवं मांसाहारी पशु शेर आदि जीव भूख लगने पर शिकार करते हैं अन्यथा नहीं। किन्तु मनुष्य भोग–विलास की भावनाओं के कारण प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर उसके साथ असंतुलन बना रहा है, जिसके कारण निरन्तर भूकम्प, बाढ़, अकाल, अतिवृष्टि आदि हो रहे हैं।

विश्व में जितने धर्म हैं, लगभग सभी ने किसी–न–किसी रूप में अहिंसा को मान्य किया है। वैदिक धर्म हो या जैन धर्म हो, बौद्ध धर्म या ईसाई धर्म हो या हो इस्लाम धर्म, पारसी धर्म या सिक्ख धर्म; फर्क सिर्फ इतना है कि किसी ने अहिंसा के सिद्धान्त को आंशिक रूप में ग्रहण किया है तो किसी ने उसकी साधना में पूरा जीवन लगा दिया है। यहाँ तक कि साम्यवादी देश भी, जहां धर्म को अफीम के समान माना जाता है, अपनी जनता का भविष्य सुखद एवं सरस बनाने के लिए अहिंसा को स्वीकारते हैं। अहिंसा सिद्धान्त की इस सार्वभौम स्वीकृति के बावजूद अहिंसा के अर्थ को लेकर एकरूपता नहों है। हिंसा और अहिंसा के बीच खोंची गयी भेद–रेखा सभी में अलग–अलग है। कहों पशुवध को ही नहों, बल्कि नर–बलि को भी हिंसा की कोटि में नहों रखा गया है तो कहों वनस्पतिक हिंसा अर्थात् पेड़ पौधों को पीड़ा देना भी हिंसा माना जाता है। सामान्यतः हिंसा का अभाव ही अहिंसा है। ऐसे तो अहिंसा पर सदियों से विचार होता आ रहा है, फिर भी अहिंसा की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितनी हजारों वर्ष पूर्व थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अहिंसा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके विवेचन में हजारों पृष्ठ लिखे जाएं तो भी पर्याप्त नहों होंगे। परन्तु अहिंसा जितनी व्यापक है, उतनी ही व्यापक हिंसा भी है। अतः अहिंसा के स्वरूप को समझने से पूर्व हिंसा के स्वरूप को समझना आवश्यक है, क्योंकि बिना हिंसा को जाने अहिंसा की व्यापकता पर प्रकाश नहों पड़ता।

अहिंसा को परिभाषित करते हुए 'आचारांगसूत्र' में कहा गया है – सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और तत्त्वों को न मारना चाहिए, न अन्य व्यक्ति द्वारा मरवाना चाहिए, न बलात् पकड़ना चाहिए, न परिताप देना चाहिए, न उन पर प्राणापहार या उपद्रव करना चाहिए, यह

अहिंसा धर्म ही शुद्ध है। यद्यपि इस कथन के मूल में 'अहिंसा' शब्द का प्रयोग नहों हुआ है। व्याख्याकार ने वस्तु एवं विषय की स्पष्टता के लिए इसमें अहिंसा शब्द बढ़ा दिया है, क्योंकि इस कथन में जो भी बात कही गयी हैं, अहिंसा पर ही लागू होती है तथा इसमें जिस शुद्ध धर्म का प्रतिपादन हुआ है, उसे अहिंसा माना गया है। इसी प्रकार 'सूत्रकृतांग' में अहिंसा की परिभाषा को निरूपित करते हुए कहा गया है कि **ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करं।** अहिंसामूलक समता ही धर्म का सार है। बस, इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि बुद्धिमान को सभी युक्तियों के द्वारा जीवों के जीवत्व को जानना चाहिए तथा सभी जीवों को कष्ट अप्रिय होता है, इन दोनों बातों को जानकर किसी भी प्राणी की हिंसा नहों करनी चाहिए। परन्तु अहिंसा की पूर्ण परिभाषा 'आवश्यकसूत्र' में उपलब्ध है। उसम कहा गया है – **किसी भी जीव की तीन योग और तीन करण से हिंसा नहीं करनी चाहिए, यही अहिंसा है। मन, वचन और कर्म तीन योग कहलाते हैं तथा करना, करवाना और अनुमोदन करना तीन करण कहलाते हैं। इस तरह नौ प्रकारों से हिंसा न करना ही अहिंसा है।**

दानवता प्रदूषण फैलाती है, मानवता पर्यावरण को संरक्षित करती है और देवत्व उसे सवंर्धित करता है। भगवान महावीर ने मानवत्व एवं देवत्व से युक्त गुणों को भिक्षुओं के लिए निर्धारित किए हैं। जिसके अनुपालन से वे स्वतः ही पर्यावरण संरक्षक व संवर्द्धक बन जाते हैं। भगवान् ऋषभदेव ने **"सर्वजन सुखाय"** के सन्दर्भ में असि, मसि और कषि की शिक्षा पर जैन समाज–व्यवस्था की नींव रखी और "**परस्परोपग्रहो जीवानाम**" का उपदेश दिया और कहा कि प्रत्येक जीव एक–दूसरे पर आश्रित या पूरक है, जैसे– वृक्षादि हमें शद्ध, जल, ईंधन आदि देते हैं, अतः वृक्षों का सम्वर्धन और संरक्षण हमारा कत्तव्य है। जैन मान्यतानुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जीवत्व से पूर्ण है। जगत् में ऐसा कोई तत्त्व नहीं जिसमें जीवत्व न हो। जैन धर्म–दशन के अनुसार मुख्य रूप से दो प्रकार के जीव हैं– मुक्त और संसारी। संसारी जीव क अन्तर्गत दो प्रकार के जीव आते हैं– त्रस और स्थावर। गतिशोलता त्रस जीव का धर्म है और स्थिरता स्थावर जीव का लक्षण। पृथ्वी, जल और वनस्पति स्थावर जीव हैं और अग्नि और वायु त्रस। यद्यपि इन जीवों में जीवत्व का प्रतिभास नहीं हो पाता फिर भी इनमें जीवन है। अन्यथा खान मे पड़े पदार्थ में वृद्धि दिखनी असंभव थी। आधुनिक विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है। जैन दर्शन की यह विशिष्टता है कि वह पृथ्वो, जल, वायु, वनस्पति के साथ भीषण अग्नि में भी जोवत्व को स्वीकार करता है जो कि भीषण अग्निकाण्ड एवं विस्फोट के समय देखी जा सकती है। जीव की इस शक्ति के समक्ष मनुष्य की सारी शक्तियों को हार माननी पड़ती है। जैसे मनुष्यों और पशुओं के जीवन के लिए प्राणवायु ऑक्सीजन अनिवार्य है, वैसे ही अग्नि भी ऑक्सीजन के सहारे ही जीवित रहती है।

संग्रह की वृत्ति को ही जैन दर्शन में परिग्रह कहा गया है। परिग्रह के कारण ही समाज में आर्थिक विषमता देखने को मिलती है। इसी आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए महावीर ने अपरिग्रह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। किसी भी वस्तु को आवश्यकता से अधिक संचित न करना ही अपरिग्रह है। आज विश्व में शान्ति की स्थापना के लिए अपरिग्रह के सिद्धान्त को क्रियान्वित करने की अत्यधिक आवश्यकता है। समाज में व्याप्त दमन, भोगवाद आदि का मूल कारण है– लोगों में अपरिग्रह वृत्ति का अभाव। आचार्य हेमचन्द्रजी ने 'प्रश्नव्याकरण' की व्याख्या में कहा गया है – 'जिन वस्तुओं को ग्रहण करने या पाने के लिए तुम आतुर हो रहे हो, वे सब अनित्य हैं, नाशवान हैं, तुम्ह शरण देने वाली नहों हैं। तुम्हारे साथ जाने वाली नहों हैं, तुम्हारी आत्मा स भिन्न हैं, शरीर में जाकर वे गन्दगी बढ़ाती हैं अथवा लड़ाई–झगड़े करवाती हैं, कर्म बन्धन का कारण है, तुम पर आधिपत्य जमाकर, तुम्ह गुलाम बनाकर, तुम्हारी स्वतन्त्रता का हरण करने वाली हैं, धर्म विमुख करने वाली हैं।' इसी प्रकार आचार्य विनोबा भावे ने भी कहा है कि – 'जिस पैसे को तुम परमेश्वर की तरह पूजा करते हो, वह पैसा परमेश्वर नहों पिशाच है, जिसका भूत तुम पर सवार हो गया है। जो रात–दिन तुमको सताता है, तनिक भी आराम नहों करने देता। पैसे रूपी पिशाच को देवतुल्य समझकर कब तक पूजते रहोगे और नमस्कार कर उसके आगे कब तक इसे अपनी नाक रगड़ते रहोगे।'

आज उपभोक्ता अधिक हो जाने तथा समुचित संसाधन उपलब्ध न हो पाने के कारण पर्यावरण तथा परिस्थितिकी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। लोहा, तांबा आदि धातुएँ, तेल, गैस एवं कोयला जैसे ऊर्जा स्रोतों की खपत जनसंख्या वृद्धि से भी कहीं अधिक हो रही है जो यह स्पष्ट करती है कि प्राकृतिक संसाधनों में अल्पता आ रही है। कृषि हेतु वनों को काटकर खेत बनाए जा रहे हैं। जंगलों और खेतों को समाप्त कर कंकरीट की इमारतें बनाई जा रही है। वृक्षों की कमी के कारण शुद्ध हवा का अभाव और वर्षा का अभाव, मृदा क्षरण आदि समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। फलदार वृक्षों, पेड़ों और फसलों की पैदावार में कमी आती जा रही है। पेड़ों के कटने से पहाड़ों के ढ़लान अस्थिर होते जा रहे हैं, जिससे वर्षा के पानी का बहाव मिट्टी की ऊपरी परत को बहाकर उर्वरा शक्ति में कमी कर रहा है।

वैदिक संस्कृति के समान जैन संस्कृति भी आरण्यक संस्कृति रही है। जैन पम्परा के विषयक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव पर्यावरण चेतना व संरक्षण के प्रथम सवाहक महापुरुष थे, जिन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीव के अस्तित्व की अवधारणा और उनकी रक्षा के लिए अहिंसा की परिधि को व्यापक बनाया। इसी परम्परा में अंतिम तीर्थंकर महावीर ने प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर पर्यावरण संस्कृति को विकसित किया है।

इस प्रकार जैन परम्परा का पर्यावरण विज्ञान यह मौलिक सूत्र प्रस्तुत करता है कि विश्व में केवल मेरा ही अस्तित्व नहीं है, बल्कि औरों का भी अस्तित्व है। भगवान् महावीर ने

पर्यावरण की क्रियान्विति का मार्ग प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जिन जीवों की हिंसा के बिना तुम्हारी जीवन–यात्रा चल सकती है, उनकी हिंसा मत करो। जीवन–यात्रा के लिए जिनका उपयोग अनिवार्य है, उनकी भी अनावश्यक हिंसा मत करो।

जनसंख्या वृद्धि के साथ मकानों की मांग बराबर बढ़ती जा रही है। फलतः बढ़ती जनसंख्या का पर्यावरण पर प्रभाव तथा पर्यावरण प्रदूषण का जनसंख्या पर प्रभाव मनुष्य के मानसिक, सामाजिक तनाव और ढेर सारी बीमारियों को जन्म देने वाला है। आज जहाँ एक ओर इस बेलगाम आबादी को बढ़ने से रोकना है, वहीं अपने प्रतिदिन के कार्य क्षेत्रों में कुछ ऐसा आचरण पैदा करना होगा जिससे हम और आप पर्यावरण संतुलन और मानव कल्याण में सहयोगी बन सके।

सर्वविदित है कि जैन धर्म–दर्शन एक जीवन–दर्शन है, क्योंकि वह आचार में अहिंसावादी है, विचार में अनेकान्तवादी है, व्यवहार में स्याद्वादी है और समाज में अपरिग्रहवादी है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैन धर्म के मूल सिद्धान्त हैं। यदि मानव इन्हें अपने जीवन में उतार ले तो संभव है कि पर्यावरण पूर्ण की रक्षा हो सके। सभी तीर्थंकरों ने मानवता के मार्ग को दिखाया तथा इन मूल सिद्धान्तों पर बल दिया है, परन्तु भगवान महावीर ने अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया है। उन्होंने सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त किया। **"जीओ और जीने दो"** का संदेश जन–जन तक पहुँचाया।

सन्दर्भ सूची

1. तत्त्वार्थसूत्र, 2/12–14
2. स्थानांगसूत्र, 10/16, समवायांससूत्र , 10/61
3. आचारांग, 1/4/1
4. दशवैकालिकसूत्र, 4/8
5. सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता,
   न हतंव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिधित्तव्वा,
   न परियावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे।
   – आचारांगसूत्र – 1/4/1
6. डा. सिन्हा, जैन धर्म में अहिंसा, पृ. 182
7. एवं खु नाणिणा सारं जं न हिंसई किंचण।
   अहिंसा समयं चेव एतावंतं वियणिया।।
   – सूत्रकृतांगसूत्र, 1/1/4/10
8. आवश्यकसूत्र, 1/3